शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 अप्रैल 2022
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

प्रेमचन्द की चिन्ता : तब और अब

डॉ. पूनम राठी
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
भगिनी निवेदिता कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी साहित्याकाश में चमकते सूर्य की भांति हैं जो एक ओर अपने प्रकाश से सबको प्रकाशित करता है तो दूसरी ओर अपने ताप से सबको झुलसाता भी है। प्रेमचंद ने अपने साहित्य द्वारा कृषक-जीवन के प्रकाश और ताप दोनों का उद्घाटन किया है। उन्होंने अपने साहित्य में कृषक समाज के दारुण दुःख का जितनी सच्चाई से चित्रण किया है, वह वास्तविकता के अत्यंत निकट है। भारतीय किसानों के सामने जो चुनौतियां उस समय मौजूद थीं, वही कमोबेश आज भी उपस्थित हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रेमचंद की चिंता का आज के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना

भारतीय किसान के जीवन को, उसकी यथार्थ स्थितियों को देखकर मुंशी प्रेमचन्द सदैव चिन्तित रहते थे। वे सदैव उन स्थितियों और परिस्थितियों के विषय में सोचते रहते थे जिनसे किसानों की स्थिति में सुधार आ सके। उनकी किसानों के प्रति ये चिन्ता उनके लेखों ('हतभागे किसान', 'जबरदस्ती', 'आराजी की चकबन्दी' आदि), उनकी कहानियों ('बलिदान, विध्वंस', 'सवा सेर गेहूं', 'पूस की रात' आदि) तथा उनके उपन्यासों ('प्रेमाश्रम', 'कर्मभूमि', 'गोदान' आदि) में व्यक्त हुई है। ऐसा लगता है मानो प्रेमचन्द की सूक्ष्म पारखी दृष्टि ने कृषक जीवन की वेदना को बहुत गहराई से पहचाना था।

कृषि, सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग की वार्षिक रिपोर्ट 2019-20 के अनुसार 'भारत की अर्थ व्यवस्था में कृषि की एक महत्वपूर्ण भूमिका है। कुल कार्य बल की 54.6 प्रतिशत आबादी कृषि और उससे संबद्ध क्षेत्र के कार्य कलापों में लगी हुई है (जनगणना 2011) और वर्ष 2019-20 में देश के सकल मूल्य संवर्धन में इसकी भागीदारी 16.5 प्रतिशत रही है।"[1]

इस रिपोर्ट के अनुसार भारत की अर्थ व्यवस्था में कृषि और किसानों का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि 54.6 प्रतिशत भारत की आबादी कृषि और उससे जुड़े हुए कार्यो में लगी हुई है। फिर भी उसकी अनदेखी? वह बदहाली में जीवन यापन करने को विवश है।

प्रेमचन्द ने किसानों की इस बदहाल स्थिति को समझा, उस स्थिति को सभी के सामने लाने के लिए अपनी कलम को हथियार बनाया तथा किसानों की दुर्दशा का वर्णन अपने लेखों

कहानियों और उपन्यासों में किया। 'गोदान' तो मानों किसान की गाथा का महाकाव्य है। प्रेमचन्द ने इसमें किसानों के जीवन की एक-एक परत को खोलकर रख दिया है। इन परतों में किसानों के शोषण की समस्या, पारस्परिक फूट और आपसी वैमनस्य की भावना, संयुक्त परिवारों में विघटन तथा खेतों का बंटवारा, परिणाम स्वरूप आर्थिक बदहाली, और सबसे अधिक कष्टकर कभी न उतरने वाला कर्ज का बोझ आदि सभी कुछ शामिल हैं।

प्रेमचन्द की चिंता : तब और अब

प्रेमचन्द की चिन्ता किसी एक गांव या एक प्रदेश के किसान के लिए नहीं थी, अपितु पूरे देश के किसानों के लिए थी, क्योंकि सभी की स्थिति एक समान थी, कहीं कोई परिवर्तन नहीं था। पूरे देश का किसान बदहाली और शोषण का शिकार था। 'गोदान' प्रेमचन्द की किसान जीवन के संघर्ष और उसके प्रति चिन्ता को व्यक्त करने वाली महत्वपूर्ण रचना है। 'होरी' प्रेमचन्द का नायक ही नहीं सम्पूर्ण भारत के किसानों का प्रतिनिधि, वर्ग पात्र है जिसके माध्यम से किसानों की दर्द भरी दास्तान को व्यक्त किया है। जिस देश को कृषि प्रधान कहा जाता है। जो कृषि देश की रीढ़ है। उसी कृषक की ऐसी हालत है कि वह कर्ज के दलदल में ऐसा फंसा है कि उसमें से निकलने के लिए जितना हाथ पैर मारता है उतना ही और फँसता जाता है। इस कर्ज से उसकी मुक्ति नहीं है, वह अपने परिवार की छोटी से छोटी इच्छा भी पूर्ण नहीं कर पाता। उन्हें पेट भर भोजन और तन ढ़कने को वस्त्र भी उपलब्ध नहीं करा पाता।

मुंशी प्रेमचन्द की चिन्ता का एक बड़ा कारण 'कभी खत्म न होने वाला कर्ज है, जो घुन की तरह धीरे-धीरे हमारे कृषक समाज को खोखला किए जा रहा है। कितने भी प्रयास करो कर्ज का घुन खत्म ही नहीं होता, चाहे वह लगान के रूप में हो या सूद के रूप में। 'बाकी' और 'लगान' की भयावह स्थिति को मुन्नी (पूस की रात) तथा धनिया (गोदान) दोनों ही भली भांति समझती थी। तभी तो मुन्नी का कथन इसी वास्तविकता का उद्घाटन है 'न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने में ही नहीं आती।' तथा धनिया का यह कहना कि -"चाहे कितनी भी कतर ब्यौंत करो, कितना ही पेट-तन काटो, चाहे एक-एक कौड़ी को दांत से पकड़ो, मगर लगान बेकाबू होना मुश्किल है।"[2]

सच्चाई और वास्तविकता यही है कि ग्रामीण समाज में कुछ समर्थ और सम्पन्न लोग मिलकर किसान को 'कर्ज' के इस दलदल से बाहर ही नहीं निकलने देना चाहते, क्योंकि यदि किसान उनके चंगुल से निकल गया तो वे किसके दम पर मौज उठाएंगे ? जमींदार, साहूकार, महाजन सब के सब एक नम्बर के मक्कार और धूर्त हैं। जमींदार ऐसे नाजुक अवसर पर बकाया लगान का दावा करता है। जब किसान सबसे अधिक संकट में होता है और बकाया लगान भरने के लिए किसी भी तरह रूपये नहीं जुटा सकता। तब महाजन या साहूकार उद्धारक बनकर किसान को कर्ज देने के लिए सामने आते हैं। किसान (लगान भरने के लिए) जमींदार के चंगुल से निकलकर महाजन के कभी न खत्म होने वाले कर्ज की गिरफ्त में आ जाता है। ये स्थिति किसी एक किसान की नहीं थी, लगभग सभी किसानों की थी। होरी की स्थिति दिन-प्रतिदिन बद से बदतर होती जा रही थी। अन्नदाता कहा जाने वाला यह किसान सारे साल जाड़ा, गर्मी, बरसात की परवाह न कर खेतों में हाड़ तोड़ मेहनत करने के बाद

भी अपने परिवार को अन्न (गेहूँ) का एक भी दाना मयस्सर न करा पाता था।

"सब कुछ खलिहान में तौल देने के बाद भी अभी होरी पर लगभग तीन सौ रूपये का कर्ज था, जिस पर सौ-सौ रूपये सूद के बढ़ते जाते थे। ...दातादीन पंडित से तीस रूपये लेकर आलू बोए थे। आलू तो चोर उखाड़ ले और उन तीस के अब इन तीन वर्षो में तीन सौ हो गए।"[3]

कर्ज के साथ-साथ प्रेमचन्द की चिन्ता का कारण कर्ज का गणित भी था। कर्ज देने वाले साहूकार, महाजन आदि का अपना एक अलग ही गणित चलता था, जिसके कारण सूद पर पैसे देने वाला किसानों को पूरे पैसे भी नहीं देता था, बल्कि सूद के पैसे पहले ही काटकर बाकी पैसे किसानों को देता था और सूद फिर से पूरे पैसों पर चालू हो जाता था जैसे - तीस रूपये का कागज लिखने पर केवल पच्चीस रूपये ही किसान के हाथ आते थे और यदि तीन-चार साल तक वापस न हो पाए तो पूरे सौ हो जाते थे। दूसरी तरफ झिंगुरी सिंह इस खेल का शातिर खिलाड़ी था। वह पक्का कागज लिखता था और नजराना, दस्तूरी, स्टम्प की लिखाई तथा एक साल का ब्याज पेशगी काटकर पच्चीस में से कुल सत्रह रूपये कर्जदार को देता था। प्रेमचन्द भली प्रकार जानते थे कि कर्ज के इस गणित के सफल होने का और इस व्यापार के फलने-फूलने का कारण किसानों की अशिक्षा तथा आय का अन्य कोई स्रोत न होना है। साथ ही किसान इस स्थिति को कर्मो का फल तथा नियति मानकर अपने जीवन की गाड़ी को खींच रहा था।

प्रेमचन्द ने गोदान की रचना 1935-36 ई. में की थी। यह वह समय था जब भारत में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन पूरे जोर पर था। समाज में पुनर्जागरण की लहर फैल रही थी और समाज को प्रभावित कर रही थी। किन्तु भारतीय समाज का ग्रामीण क्षेत्र इन सब से अछूता था। वहाँ जमीदारी प्रथा किसानों को शोषण के शिकंजे में कसे हुए थी। जमींदार, पटवारी, कारकुन, सूदखोर, साहूकार, महाजन, पंडित आदि सबके लिए किसान नरम चारा था। जमींदार के कारिंदे किसानों से लगान वसूल करते थे और उसकी कोई रसीद भी नहीं देते थे, इसलिए लगान भर देने के बाद भी जब चाहे तब किसानों पर लगान का तकादा कर देते थे। किसानों का शोषण केवल पुनः पुनः लगान भरने तक ही सीमित नहीं था अपितु जमींदार नाजायज रूप से नजराना लेते थे, जुर्माना वसूलते थे और बेगार कराते थे। किसान ये सब करने को मजबूर था। वह यह जानता था कि जल में रहकर मगर से बैर नहीं किया जा सकता। तभी तो होरी कहता है- "जब दूसरे के पांवों तले अपनी गरदन दबी हुई है तो उन पांवों को सहलाने में ही कुशल है।"[4]

यह कैसी विडम्बना है कि होरी जैसा किसान अपने शोषकों के बारे में सब जानता है लेकिन रूढ़ियों और संस्कारों से बंधा होने के कारण उनका विरोध नहीं करता। किसानों का शोषण केवल जमींदार के स्तर पर ही नहीं होता अपितु इस शोषण के अनेक स्तर हैं। कभी पंडित दातादीन सेंतमेत में होरी से अपने खेत जुतवाता है तो कभी पंच बिरादरी निष्कासन का भय दिखाकर उस पर 100 रूपये नगद और 30 मन अनाज की डांड लगा देते है। बिरादरी-निष्कासन से बचने के लिए धर्मभीरू और परम्परावादी होरी 100 रूपये नगद देने के लिए अपना घर गिरवी रखता है, और फसल पर पैदा हुआ पूरा का पूरा अनाज डांड में दे देता है।

गिरिराज किशोर अपने लेख 'गोदान-महाजनी-सभ्यता का भाष्य है' में इस स्थिति को स्पष्ट

करते हुए कहते हैं "यह उपन्यास शोषण को सहते जाने की अदम्य मानवीय सामर्थ्य का महाकाव्य है। यह भारतीय समाज का ऐसा सत्य है जो सदियों से चलता आ रहा है और आज भी बरकरार है।"[5]

प्रेमचन्द की चिन्ता शोषण से भी अधिक शोषण तन्त्र को लेकर थी, क्योंकि ये कोई एक व्यक्ति या एक समूह नहीं पूरा का पूरा तन्त्र ही इसमें शामिल है जो गरीब किसान को तबाह बर्बाद करने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं। "किसान के जीवन को चूसने वाली उसके चतुर्दिक व्याप्त अपशक्तियां हैं - जमींदार (राय साहब), उनका करिन्दा (नोखेराम), पटवारी (पटेसरी), साहूकार (मंगरू और दुलारी), छोटे जमींदार (झिंगुरी सिंह), पुरोहित (दातादीन)। ऊपर से ये सभी किसानों के गलत कामों का दण्ड देते हैं। इनकी अपने आप बनी हुई पंचायत है जो किसानों के भले बुरे कामों का फैसला करके उन्हें दण्डित करती रहती है। ये सभी अपनी वाणी में देवता है लेकिन आचरण में राक्षस हैं।"[6]

'गोदान' लिखे जाने के 86 वर्ष बाद भी आज किसानों की समस्याएं ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। समय बदला व्यक्ति बदले लेकिन शोषण और कर्ज के जंजाल से गरीब किसानों की मुक्ति नहीं। वर्तमान में संयुक्त परिवार समाप्त होते जा रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति का परिवार स्वतंत्र इकाई है। इस अलगाव (परिवारों के विघटन) के कारण खेतों का आकार भी छोटा होता जा रहा है। कृषि, खाद, उर्वरक, बीज, बिजली, सिंचाई के साधन सब महंगाई की भेंट चढ रहे हैं, फलस्वरूप खेती लाभकारी नहीं रह गई है। अगर फसल पैदा भी हो जाती है तो कभी अतिवृष्टि, कभी अनावृष्टि तो कभी ओलावृष्टि फसलों को बर्बाद कर देते हैं। यदि इन से भी फसल बच जाए तो आवारा (छुट्टा) पशुओं का झुंड का झुंड आकर थोड़ी ही देर में देखते देखते पूरी फसल चट कर जाता है। आज भी उत्तर भारत का किसान 'हल्कू' (पूस की रात) और होरी (गोदान) की तरह जनवरी की हाड-कंपाती ठंड में इन पशुओं से अपनी फसल बचाने के लिए रात-रात भर जाग कर पहरेदारी करता है।

समय-समय पर अपनी स्थितियों से असन्तुष्ट होकर किसानों ने आंदोलन भी किए जैसे- 'बिजोलिया आंदोलन' (1847), 'नील आंदोलन' (1859), 'चंपारण का किसान आंदोलन' (1917), 'खेड़ा आंदोलन' (1918), 'बारदोली आंदोलन' (1928) और इनके अतिरिक्त अभी वर्तमान में 'तीन कृषि बिल' के विरोध में किसान आंदोलन (2020-21)। ये सभी आंदोलन किसानों की बदहाल स्थिति को लेकर किए गए थे। इन आंदोलनों से कभी थोड़ा बहुत लाभ भी हुआ और कभी ये राजनीतिक षडयन्त्र की भेंट चढ़ गए।

वर्तमान में भी किसानों की स्थिति प्रेमचन्द युगीन किसानों से बेहतर नहीं है। आज भी "स्थायी कर्ज का बैताल किसान की गर्दन पर हमेशा सवार रहता है। जिदंगी भले ही बीत जाए पर कर्ज नहीं बीतता।"[7] धीरे-धीरे उसका घर, खेत, खलिहान सब कर्ज की भेंट चढ़ जाते हैं तत्पश्चात् या तो किसान मजदूर बनकर शहरों की ओर पलायन कर जाता है या आत्महत्या करने को विवश हो जाता है।

"राष्ट्रीय अपराध लेखा कार्यालय के आँकड़ों के अनुसार भारत भर में 2007 ई. में 16,196 किसानों ने आत्महत्याएँ की थीं। सन 2009 के दौरान 17,368 किसानों द्वारा आत्महत्या की अधिकारिक रिर्पोट दर्ज हुई। 2011 के आंकड़े बताते हैं कि पाँच राज्यों क्रमश: महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़

में कुल 1534 किसान अपने प्राणों का अंत कर चुके थे।"[8]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि जो समस्याएं तब किसानों के लिए अभिशाप बन रही थी जिन्हें लेकर मुंशी प्रेमचन्द तब चिन्तित थे वही समस्याएं आज भी वर्तमान हैं तथा सारी समस्याओं की जड़ है - 'आर्थिक समस्या' अर्थ की यह समस्या सारी समस्याओं के मूल में निरन्तर नदी के समान प्रवाहित हो रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. वार्षिक रिपोर्ट 2019-20: कृषि, सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग, भारत सरकार, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001, पृष्ठ 1

2. गोदान, प्रेमचन्द, मनीष प्रकाशन, बुलन्दशहर (उ.प्र.), 203203, पृष्ठ 5

3. गोदान, प्रेमचन्द: मनीष प्रकाशन, बुलन्दशहर (उ.प्र.), 203203, पृष्ठ 38

4. गोदान, प्रेमचन्द: मनीष प्रकाशन, बुलन्दशहर (उ.प्र.), 203203, पृष्ठ 5

5. गोदान का महत्व: संपादक डॉ. सत्यप्रकाश मिश्र, प्रकाशन: नई कहानी, 170 अलोपी बाग, इलाहाबाद (उ.प्र.) संस्करण प्रथम 1992, पृष्ठ 80

6. कथाकार प्रेमचन्द : संपादक डॉ. रामदरश मिश्र, डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त, प्रकाशन राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-110002, संस्करण प्रथम 1997, पृष्ठ 155

7. गोदान, प्रेमचन्द : मनीष प्रकाशन, बुलन्दशहर, (उ.प्र.) 203203, पृष्ठ 147

8. भारत में किसान आत्महत्या : विकिपीडिया